कहानी

सुमित्तरा की बेटियां

सूर्यबाला

वहां शहर की आबादी खत्म होती थी— चारों तरफ़ पीली, रेतीली, खसखसी, मिट्टी के ढूह थे। ढूहों पर ढेर-की-ढेर कब्रें। और शहर की आबादी की छोर पर हमारा मकान। हमारे बाद मछुआरों के झोपड़ों की कतारें। बीचोबीच उसका "टटरा"।

वह अपने घर को "टटरा" कहती थी। उसी टटरे के बीच से वह पैरों में मोटे-मोटे गिलट के कड़े-छड़े और झांझरे झमकाती आंधी-तूफान-सी आती और ओखली-मूसल सहेज लेती। दो-चार मल्लाहिनें, नौकर और भी आगे-पीछे बैठते-उठते होते। वह सबसे हंसी-ठिठोली करती, लगातार खिलखिलाती रहती। मुट्ठियों में थमा मूसल अपनी रफ़्तार से चलता रहता। कभी धान कूटते-कूटते अचानक बच्चों के बीच से मुझे उठा, ठुमका लगाकर दो झोंकेदार चक्कर मार लेती।

वह चक्कर मारकर ठुमका लगाती होती तो उसके कनफूलों से झूलती चांदी की मैली ज़ंजीर बाजरे की बालियों-सी लगतीं। मल्लाहिनें होंठों के कोनों में पल्लू का छोर दबाकर निहायत दकियानूसी तरीके से लजातीं और मुआइने पर निकली ताई झिड़कते हुए गुज़र जाती— "मुंहजोर!" तुझे धान कूटने को बिठाया था न-जाके मर्दाने में मजलिस लगा न! यहां क्या दीदे चमका रही है।"

वह खुलकर हंसती... "मेरी मजलिस तो धान की ढेरी के बीच ही लगती है बहूजी। ये लो तीन ढेरी कूट दीं। बाकी उस पहर—" और ताई के ना-ना करते भी एक झपाके से मुझे गोदी में झुलाती, तेज़ झोंके-सी गुज़र जाती।

बिल्कुल अलग थी वह, अपनी हमउम्र कामचोर मल्लाहिनों से। न उन सबों की तरह कसोरे-कसोरे भर तेल चुपड़कर बाल संवारती, न माथे के बीचोबीच में मांग फाड़, पीले सिंदूर की पतली लाइन लगाती। और ना ही बात-बेबात लजाती, अलसाती...

मैंने उसे कभी किसी से आम औरतों की तरह फुसफुसाते, बतियाते नहीं देखा था। धान कूटते हुए भी वह उसकी लय पर कोई-न-कोई चुटकी बजाकर दुलारते या चक्कर मारकर घुमाते, खिलखिला लेती। कोई कुछ पूछता, कहता तो बड़ी खुशदिली से लेकिन अति संक्षिप्त-सा जवाब देती।

उसकी बुसी देह से आती गोबर पाथने, सानी-पानी करने और कुटे अनाजों की मिली-जुली गन्ध। हवा के झोंकों के साथ एकसार उसके रूखे बेतरतीब बाल और कलाइयों की नोकदार ककनी, मुझे उसके प्रति प्यार और गिजगिजाहट दोनों से एक साथ भर देती।

बाहर नीम-जामुन की झुरझुराती हवा खाता सूरज आराम से चिपरी-पाथी दीवारों के पार छुपता होता। गन्दी मैली कुर्तियों और भूरे बालों वाली उसकी दोनों लड़कियां, अपनी या किसी और की गाय-भैंस चराकर लौट रही होतीं। "माई" को देखते ही वे हाथों से संटी फटकारती, दुलराती दौड़ आतीं। पास आने पर, अपनी फटी कुर्तियों की जेब में ठुंसी जंगली बेरियां और कच्चे अमरूद माई को दिखातीं और बतातीं कि गोरू प्यासे हैं।

एक बार सांझ ढले वह मुझे भी अपनी गोद में लाद-लादे दोनों लड़कियों सहित टटरे में लेती गयी थी।

फटे-चिरे बांसों को ठोक-पीटकर बनाये गये दरवाज़े में कहीं से लोहे की एक जंग लगी सांकल लाकर अटकायी गयी थी और उस सांकल मे एक ताला। मुझे लादे-लादे उसने ताला खोला। सारी जगह, गोबर, मवेशी और सानी-पानी की तेज़ गंध। एक तरफ़ भैंस और उसकी पड़िया बांधने की जगह, दूसरी तरफ़ अधपिचके बर्तन-बासन।

उसकी दोनों लड़कियां, पियरिया और झुमरिया अपने टटरे में आकर इतनी खुश हो गयीं जैसे दीवानेखास पहुंच गयी हों— और मारे खुशी के ज़्यादा लड़ने-झगड़ने और दुलारने लगीं।

उसने लड़कियों को दुलार से डपटा और आंचल के छोर से कुछ पैसे उनके हाथ में रख, दौड़कर मेरे लिए बिस्कुट लाने को कहा। फिर जल्दी-जल्दी अपनी भैंस का सानी-पानी करने लगी... लड़कियां दौड़ती हुई बिस्कुट ले आयीं। उसने बड़े प्यार से एक बिस्कुट मुझे और आधा-आधा उन दोनों को दिया।

अंधेरा हो चला था। उसने ताक से ढिबरी उतारकर जलाई और बेटियों को, मैले से चीकट कपड़े में लपेटकर रखी रोटियां निकालकर खाने को दीं।

ढिबरी के मैले उजाले में मैं बिस्कुट और वे तीनों रोटियां कुतर-कुतरकर खाते रहे। अनायास मैंने जानना चाहा— "सुमिन्तरा, तू टटरे में क्यों रहती है? टटरे में तो हमारे जानवर रहते हैं।"

उसने मुस्कुरा कर कहा— "जहां हमारे जिनावार रहेंगे बिटिया, वहीं तो हम भी रहेंगे न..."

मैंने सयानों की तरह गर्दन हिलाई... तभी झुमरिया ताक पर अपने कंचे, गिट्टे रखने उचकी। अचानक चमकदार बक्सुए और पीली-काली धारियों वाली एक जैकेट नीचे आ गिरी।

उतनी-सी उमर में भी मुझे इतना मालूम था कि यह पहनावा "पुरुष" का है— "ये किसका है?"

"ढोढ़े का..." दोनों लड़कियों ने झटपट जवाब दिया—वह चौंककर जल्दी से उठी, जैकेट में चिपकी धूल, भूसा झाड़ा और वापस तह करके ताख पर रख दिया। यह नाम, एक बेढब रोड़े-सा मेरे बाल मन में यहां-वहां लुढ़कने लगा।

वह आंगन में पड़े गोभी के पत्ते और चने-मटर का साग टोकरे में बटोर रही है, अपने गोरू को खिलाने के लिए।

ताई जैसे इकड़ी-दुकड़ी के खेल में अपना पासा फेंकती है...।

"क्यों री—ढोढ़ेलाल की कुछ खोज-खबर?"

"लगी न!"

"कैसे, चिट्ठी आयी थी क्या?"

"न, मारवाड़ी बासे से कोई आता था, उससे खबर भेजी...।"

"तो, क्या खबर भेजी? आता है क्या?"

"चढ़ते जेठ या उतरते असाढ़।" प्रश्न से बचने के लिए ही वह पत्ते समेट शीघ्रता से उठने का उपक्रम करती-सी...।

"अरे कुछ खर्चा-पताई भी भिजवाई?"

"आजकल ऐतबार नहीं न बहूजी किसी का...।"

कहते-कहते वह जीना पार कर जाती है जिससे ताई के होंठों के कोनों की मुस्कुराहट का सामना न करना पड़े। लाचार ताई अकेले में मुस्कुरा लेती है...।

"ढांपती चलती है बेचारी, ढोढ़ेलाल की करनी— कुकरनी..."

पियरिया, झुमरिया भी हमारे ही बाड़े से तोड़ी जामुनें ठूंसे जी भर शरारतें करती, इठलाती खिलखिलाती रहती हैं। बेटियों के साथ जब वह अपनी भैंस और उसकी पड़ियों को दुलारती है तो उस टटरे में भी एक उजास-सी फूटती है।

वह हंसती है, लहरदार ठुमके लगाती है, लेकिन किसी ने उसे गाली-गलौज या बेअदबी पर उतारू होते नहीं देखा। करीब-करीब सारे ही नौकर, मल्लाहिनें, ताऊ के शिकार पर जाने की बात पर अकेले में कनखी मारकर मुस्कुरा लेते हैं— मिसरानी तो एक बार बोल भी पड़ी थी। "आप भी निकल जाया करो न बहूजी सिकार पे—साहेब के साथ..." पर ताई ने छूटते ही मुंह बिचकाया था— "ना रे, मुझे तो मचान के नाम से ही घुमटा आता है। वरना साहेब तो कई बार कित्ता इसारा किये, नाराज़ हुए लेकिन. .." हर कोई ताई के न जाने का कारण जानता था। साहेब एक शिकारगाह पर कई निशाने लगाते हैं।

वक्त-बे-वक्त ताई के चेहरे पर भी छोटी-बड़ी आंधियां उठती थीं, राख बैठती थी। लेकिन कनफूल की झूलती ज़ंजीरों के बीच सजा उसका चेहरा कभी कुम्हलाया नहीं। ज़िन्दगी हमेशा पूरे हुलास के साथ सहेजी हुई।

मुझे तो फिटन से उतरकर शिकारवालों को हाथ हिलाते ताऊजी भी, कभी-कभी बड़े बेचारे-से लगते-लेकिन वह कभी नहीं लगी "बेचारी" सी, जाने क्यों?

तब भी नहीं जब सीधे-सीधे किसी ने पूरी निर्दयता से पूछ डाला।

"क्यों री! कहीं, वहीं के वही, कोई रख-रखा तो नहीं ली ढोढ़े बट्टरबाज ने..."

"आंख की ओट तो दुनिया की ओट"— वह प्रसंग समाप्त करती टोकरा लिये तेज़ी से निकल जाती।

"फिर भी, आदमजात को अपनी ज़िम्मेदारी तो समझनी चाहिए—आता कब है बदजात इस तरफ़..."

"आयेगा तो देख लेना। छुपाके तो रखूंगी नहीं...।"

हां, ऐसी बातों के दौरान कुछ देर चांद-सूरज ज़रूर बारी-बारी उसके चेहने पर उगते-छुपते रहते। पर कुछ देर में वही टटरा, गोबर, गोरू।

अचानक खबरें फैलीं, ढोढ़ेलाल आया है— इधर नहीं, कोस-भर पीछे लाइन-बाज़ार में ठहरा है। सकलदीप के ढाबे में। फुसफुसाहटों की चिन्दियां उड़ती फिरीं। अकेले नहीं, बजबज वाली बंगालिन के साथ। राम असारे और खिलावन लाइन-बाज़ार गये थे। अपनी आंखों देख के आये हैं।

मुंह नहीं चुराया। बड़ी हौंस से मिला। ढाबे की खाट पर बिठाकर गोश्त-रोटी खिलायी। अपनी राम कहानी सुनाई। अब तो जो भी इधर से जाता है, लाइन-बाज़ार सकलदीप के ढाबे पर ज़रूर जाता है। ढोढ़े की वजह से ढाबे की बिक्री बढ़ गई है बजबज वाली लुगाई अदब से अन्दर रहती है। इतना नेक और दरियादिल ढोढ़ेलाल कभी नहीं रहा। खेलावन के पूछने पर तो कंठी पर हाथ धर सच का सच उगल भी दिया और कहने लगा, "आधी रात को रोती-बिलबिलाती कोठरी में आ पड़ी-लुगाई जात जान के रहम किया, आसरा दिया। तड़के लाठी-बल्लम लिये उसकी बिरादरी आ खड़ी हुई। अब बोलो, अपनी इज्जत देखें या लुगाई का रोना। फंस ही गया समझो। अब छोडूं तो कैसे? अपना ईमान, अपनी कंठी की भी तो लाज है। गुंसाई जी कह गये हैं, प्राण जाई पर बचन न जाई।"

"सुमिन्तरा का नाम लेते ही आसमान की तरफ़ हाथ जोड़, अंगोछा आंखों पर लगा लेता है— 'ऊ तो साच्छात देवी है देवी—छिमा बड़े को चाहिये-छिमा बरतेगी। पियरिया-झुमरिया को भी निबाह ले जायेगी, जैसे इत्ते बरस निबाहा, आगे भी। बाकी, ब्याह-सादी पे जो कमीबेसी पड़े तो मैं हाज़िर हूं ही। इस चोट्टी के तो खुद ही तीन हैं। उन्हें कहां झोकूं।" धीरे-धीरे करके मल्लाही के टोले के सब हो आये। सकलदीप के ढाबे के गोश्त और ढोढ़ेलाल की खातिर ने सभी का मुंह सिल दिया था। मरद बेचारा—अब करे भी क्या! लुगाई की जात जो न कराये। सब आते-जाते सुमिन्तरा को कहने-समझाने लग जाते, "सुन सुमिन्तरा! इतना सच तो है ही कि सबके सामने कबूल रहा है। चोरी-छुपे ही बिठा लेता तो क्या करती? माफ़ कर दे उसे।"

और देखते-देखते मल्लाही टोलों के आखिरी झोपड़े पर हरी-गुलाबी झंड़िया बंधी और बजबज की बंगालिन ने चुनरी-गोटे में ढोढ़ेलाल के साथ गांठ बांध ली। नगाड़े पर चोटें पड़ती रहीं, तुरही चीखती रही। जब भांवरें पड़ रही थीं तो झुमरिया पेड़ पर चढ़ी, बिरादरी का जीमना देख रही थी।

मैंने खिड़की से झांक कर बड़ी बहन से पूछा— "मल्लाही टोले में क्या हो रहा है?"

"ढोढ़े की शादी।"

मैंने पूछा, "ढोढ़े कौन है?"

बहन ने धीरे से कहा— "पियरिया की माई का दूल्हा..."

पंगत जीम चुकी थी। मल्लाहिनें दुल्हन को टैक्सी में बैठा रही थीं— गाड़ी स्टार्ट होने को थी कि अचानक तीर की तेज़ी से झुमरिया पेड़ के नीचे उतरी और ज़मीन की खसखसी रेत, मिट्टी, कीचड़ जो भी उसके हाथों में समाया— भरपूर उठाकर स्टार्ट होती टैक्सी पर फेंककर चिल्लाई— "ढोढ़े मर गिया, उठी लाश।" जब तक लोक चपतियाने को दौड़े, वह उसी तेज़ी से हांफती हुई बाड़े की दीवार फलांगती, गायब—।

खिड़की, मुड़ेरों से झांकते चेहरे, अपने-अपने आंगन, दालानों की ओर लपके—गज़ब हो गया! झुमरिया ढोढ़े की टैक्सी पर धूल फेंककर भाग गई।

सुमिन्तरा के हाथ का मूसल थमा का थमा रहा गया। हकबकाई, बदहवास सी वह नीचे भागी। नगाड़े-तुरही की आवाज़ें थम गई थीं। उत्सव समाप्ति पर था। सिर्फ़ झंडियां रेतीली हवा में झरझरा रही थीं।

वह बावली, सी पियरिया-झुमरिया—चिल्लाती भीटे दर भीटे दोनों बेटियों को पुकारती फिरी। कहीं से कोई आवाज़ नहीं—ज़रूर लोगों के डर से कहीं जीने, चौबारे में दुबकी पड़ी होंगी।

तभी कंटीली बेर के टीले पर दो मैले छींट के धब्बे दिखे। वह कड़े-छड़ों की आवाज़ बरगलाती बेतहाशा दौड़ी... पियरियाऽऽ झुमरियाऽऽ!

आवाज़ फिर भी न पहुंची। दोनों अपने खेल में पूरी तरह लिप्त थीं। मगन! पास पहुंचकर देखा, दोनों एक दूसरे की मुंडी-से-मुंडी सटाये मिट्टी का एक लम्बा-सा ढूह अपने छोटे-छोटे हाथों से बड़ी तन्मयता से थोप रही थीं—

"चोट्टिनों!" हांफ़ते-हांफ़ते दम लेकर वह बोली— "क्या है यह?..."

"ढोढ़े की कब्र।"

और दोनों ताली मार के खिखिया पड़ीं। सन्न... वह सहमी... फिर झुकी और दोनों बेटियों को कलेजे से लगा लिया।

चिपरी-पाथी दीवारों के पीछे जब सांझ का सूरज मुंह छुपा रहा था तो वे तीनों अपने टटरे की ओर लौट रही थीं।

और जितनी भी बची-खुची किरनें थीं उनकी भरपूर रोशनी उनके चेहरों को जगमगा रही थी।